International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(2): 147-150

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(2): 147-150
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-12-2023
Accepted: 13-01-2024

डॉ. बीना रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर–संस्कृत राजकीय महाविद्यालय कमान्द, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत

Corresponding Author:
डॉ. बीना रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर–संस्कृत राजकीय महाविद्यालय कमान्द, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत

बदलते परिवेश में कर्मयोग की महत्ता एवम् उपादेयताः एक विमर्श

डॉ. बीना रानी

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2024.v10.i2c.2345

सारांश
मानव मन की ज्ञान, कर्म एवं भाव; इन तीन प्रवृत्तियों में कर्म का अपना विशेष महत्त्व है। कर्मवाद की मूल भावना के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है, इसी कारण अपने प्रत्येक कर्मफल के लिए वह स्वयं उत्तरदायी होता है। कर्मयोग शब्द 'कर्म' एवं 'योग' से निर्मित होता हुआ एक योगी पुरुष की भाँति संन्यास की भावना से युक्त होकर कर्म करने हेतु प्रेरित करता है। यह मनुष्य को पुरुषार्थोन्मुख एवं आलस्यरहित होकर अपने समस्त लौकिक कर्त्तव्यों का निर्वहन करना सिखाता है। कर्मयोग कर्मार्थ कर्म की प्रेरणा देते हुए कर्मयोगी को कर्मफल का त्याग करके निरासक्त भाव से कर्म कर कर्मजनित दुःखों से सर्वथा मुक्ति हेतु दिशा प्रशस्त करता है। आधुनिक विश्व की अधिकांश समस्याएँ कर्मयोग का रहस्य जानकर उचित कर्मों में प्रवृत्त होने पर ही सुलझ सकती है। गीता के कर्मयोग सम्बन्धी रहस्यज्ञान के उपरान्त ही मनुष्य के दैहिक, दैविक व आध्यात्मिक कष्टों का निवारण हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने मानव को अपनी समस्त शक्तियाँ केन्द्रीभूत कर आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न करके कर्मफल प्राप्ति हेतु कुशलतापूर्वक संयोजित होने की प्रेरणा दी है। गीता के आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करके ही वर्तमान भौतिकतावादी विश्व में मानसिक संतोष एवं सुखप्राप्ति सम्भव है।

कूटशब्दः कर्मयोग, निष्काम कर्म, श्रीमद्भगवद्गीता

प्रस्तावना
ईश्वरकृत सृष्टि में मुख्यतः तीन लोक माने गये हैं–स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक एवं पाताललोक। स्वर्गलोक में प्राणी अपने पुण्यकर्मों का फल भोगते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हैं जबकि आजीवन स्वार्थपरक एवं शास्त्रनिषिद्ध आचरण करने वाला व्यक्ति पाताललोक में अपने पापकर्मों का फल भोगते हुए दुःख प्राप्त करता है। पृथ्वीलोक को इन तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। पृथ्वीलोक में जन्म लेकर बिना किसी स्वार्थ एवं कामना के कर्म करने वाला व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी बनता है। वह अपनी इन्द्रियों को वश में करके ईश्वर–भक्ति द्वारा संसार रूपी सागर को पार कर लेता है। इसी कारण यहाँ मानव रूप में जन्म–प्राप्ति देवताओं के लिए भी सरल नहीं है, वे भी यहाँ जन्म लेने हेतु लालायित रहते हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने इसी विचार को अपनी वाणी के माध्यम से प्रस्फुटित करते हुए मानव देहधारियों को भाग्यशाली बताया है।[1] मानव शरीर धारण करके प्राणी अपने कर्मों के आधार पर अपना भाग्य स्वयं निर्धारित करते हैं।

पृथ्वीलोक पर जन्म लेना किसी भी प्राणी के लिए अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि ऐसी मान्यता है कि ८४ लाख योनियों में विचरण करने के बाद मनुष्य योनि में जन्म सम्भव हो पाता है। विवेक जैसा दुर्लभ गुण केवल मानव में ही होता है, इसी कारण अन्य योनियों मे जन्म की अपेक्षा मनुष्य योनि में जन्म उत्कृष्ट भी है और दुर्लभ भी। मर्त्यलोक में जन्म लेकर मानव जहाँ एक ओर सत्कर्मों के द्वारा अर्जित पुण्यफलों को भोगने हेतु स्वर्ग प्राप्ति करता है, वहीं दूसरी ओर बुरे कर्मों द्वारा अपना नरकलोक का द्वार खोलकर असहनीय कष्टों को भोगता है। मानव जीवन में किस प्रकार के कार्य करने चाहिए? किस प्रकार के कार्यों को नहीं करना चाहिए? हमारे लिए क्या उचित है और क्या अनुचित? जीवन का परम लक्ष्य क्या होना चाहिए तथा उस परम लक्ष्य की प्राप्ति कैसे की जा सकती है? ऐसे असंख्य प्रश्नों के उत्तर जानने हेतु कर्मयोग का ज्ञान होना परमावश्यक है। कर्मयोग ही एक ऐसा माध्यम है जो उचित–अनुचित कृत्यों का समुचित ज्ञान कराकर जीवन के समस्त मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

कर्म का स्वरूप एवं महत्त्व

कर्मण्यता मानव जीवन का प्रमुख ध्येय है। मानव मन की ज्ञान, कर्म एवं भाव; इन तीन प्रवृत्तियों में कर्म का अपना विशेष महत्त्व है। कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है तथा कर्म ही मनुष्य जन्म का मूल कारण भी है। यजुर्वेद संसार में कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहने की प्रेरणा देता है।[2] वैदिक काल से ही संस्कृत वाङ्मय कर्म सम्बन्धी विभिन्न प्रेरक अवधारणाएँ प्रस्तुत करता आया है। ऋग्वेद में 'कर्म' शब्द 40 बार से अधिक प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ कुछ स्थानों पर पराक्रम या वीर कार्य[3] है तो कुछ स्थलों पर इसका तात्पर्य धार्मिक कृत्य[4] से है। भारतीय दर्शन परम्परा भी अपने विविध दार्शनिक सिद्धान्तों के द्वारा 'कर्मवाद' को ही प्रतिपादित करती है। चार्वाक दर्शन ही एकमात्र ऐसा दर्शन है जो कर्मवाद की अपेक्षा भौतिकतावाद का समर्थक है। सभी प्रकार के कर्मफलों की प्राप्ति हेतु मानवकृत संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण; ये त्रिविध कर्म[5] ही उत्तरदायी माने गये हैं। कर्म सत् और असत् चेष्टाओं को द्योतित करते हैं तथा सत्–असत् चेष्टाएँ ही मनुष्य के पुण्य एवं पापकर्मों का कारण होती हैं। मनुष्यों को पापकर्मों का परित्याग करके सदैव सत्कर्मों की ओर अग्रसर होना चाहिए क्योंकि अच्छे कर्म ही पुण्यफलदायक एवं मोक्षदायक होते हैं।

कर्म और पुनर्जन्म हिन्दू संस्कृति के आधारभूत तत्त्व हैं जिन पर वर्ण, आश्रम, धर्म, ऋण, संस्कार आदि प्राचीन व्यवस्थाएँ आधारित हैं। वर्तमान समय में भी पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि हेतु इन व्यवस्थाओं का परिपालन अत्यावश्यक है। आज विडम्बना यह है कि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष; इन चार पुरुषार्थों में से अर्थ व काम ही शेष रह गये हैं। समस्त संसार भौतिकवाद का अनुसरण करके केवल इन्हीं पुरुषार्थद्वय के पीछे दौड़ रहा है। कर्म सिद्धान्त ही मानव को ऐसी दुर्वह परिस्थिति से बाहर निकालकर धर्मयुक्त एवं मोक्षदायक कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। कर्मवाद की मूल भावना के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है, इसी कारण अपने प्रत्येक कर्मफल के लिए वह स्वयं उत्तरदायी होता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में मनुष्य को अपने कर्मों तथा भाग्य का निर्माता बताते हुए कहा भी गया है–'जो जैसा आचरण करता है वह वैसा ही होता है, अच्छे कर्मों वाला अच्छा प्राप्त करता है, दुष्कर्मों का आचरण करने वाला बुरा जन्म पाता है, पुण्यकर्मों से पवित्र होता है व पापकर्मों से पापी होता है। मनुष्य काममय है, जैसी उसकी कामना होती है वैसी ही उसकी इच्छाशक्ति होती है, जैसी उसकी इच्छाशक्ति होती है वैसा ही उसका कर्म होता है, वैसा ही वह हो जाता है।'[6]

सनातन धर्म ही नहीं अपितु रामायण एवं महाभारत आदि लौकिक ग्रन्थ भी कर्म की महत्ता को एक–स्वरेण स्वीकार करते हैं। कर्मों के द्वारा ही जीवन को नियन्त्रित, अनुशासित तथा सुसंस्कृत बनाया जा सकता है। शास्त्रविहित कर्म व्यक्ति के जीवन को एक नई दिशा देकर प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कराते हैं। सत्कर्मों द्वारा आत्मिक शान्ति तो मिलती ही है, साथ ही जीवन में किसी भी प्रकार की समस्यात्मक स्थिति से निवृत्ति का त्वरित मार्ग भी प्रशस्त होता है।

कर्मयोग की अवधारणा

आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग है जिसमें सभी उचित–अनुचित का विचार किए बिना आगे बढ़ना चाहते हैं। येन–केन प्रकारेण आगे बढ़ने की यह अन्ध–प्रतिस्पर्धा तभी सही दिशा में प्रवृत्त हो सकती है जब मानव अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निःस्वार्थ एवं परोपकारी भावना से युक्त होकर सत्कर्म करें। कर्मयोग शब्द 'कर्म' एवं 'योग' से निर्मित होता हुआ एक योगी पुरुष की भाँति संन्यास की भावना से युक्त होकर कर्म करने हेतु प्रेरित करता है। यह मनुष्य को पुरुषार्थोन्मुख एवं आलस्यरहित होकर अपने समस्त लौकिक कर्त्तव्यों का निर्वहन करना सिखाता है।

कर्मयोग का गूढ़ आशय जानने से पूर्व हमें कर्म के साथ ही योग के विषय में भी जानना चाहिए। योग तात्त्विक रूप से एक ऐसा सूक्ष्म–विज्ञानाधारित आध्यात्मिक विषय है जो मन और शरीर के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। योग से जुड़े ग्रन्थों के अनुसार, 'योग द्वारा व्यक्ति की चेतना ब्रह्माण्ड की चेतना से जुड़ पाती है तथा मन–शरीर व मानव–प्रकृति के बीच एक परिपूर्ण सामंजस्य बनाती है।' पतंजलि का योगसूत्र योग पर आधारित एक आधिकारिक ग्रन्थ है जिसमें चित्तवृत्तियों को नियन्त्रित कर चित्त को एकाग्र करने का नाम योग है–"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"[7] योग शारीरिक व मानसिक चेतना बढ़ाने में सहायक होता है। पतंजलि ने योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि; ये आठ अंग बताए हैं।[8] योग सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्वजनिक साधना पद्धति है जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन की सभी निर्बलताओं के ऊपर विजय प्राप्त करता है। इसीलिए 'योग समग्र रूपान्तरण का विज्ञान कहलाता है।'[9]

कर्मयोग एक ऐसा योग है जो हमें हमारी जीवात्मा से जोड़कर हमारे आत्मज्ञान को जागृत करता है। आत्मज्ञान के पश्चात् हम अपने वर्तमान जीवन के लौकिक उद्देश्यों के साथ ही साथ जीवन के बाद की अपनी गति का पूर्वाभास प्राप्त करने में भी समर्थ होते हैं। गीता में कर्मयोग को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए गृहस्थ एवं कर्मठ व्यक्ति के जीवन में इस योग का सर्वाधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है। प्रत्येक मानव के लिए यह आवश्यक है कि वह कर्मरहस्य को जानकर अपनी कर्मण्यता से स्वजीवन, समाज, देश और विश्व के परिदृश्य को सँवारने में एक आदर्श प्रस्तुत करे। कर्मयोग कर्मार्थ कर्म की प्रेरणा देते हुए कर्मयोगी को कर्मफल का त्याग करके निरासक्त भाव से कर्म कर कर्मजनित दुःखों से सर्वथा मुक्ति हेतु दिशा प्रशस्त करता है। कर्मयोग के विषय में 'गीतारहस्य' नामक पुस्तक में बाल गंगाधर तिलक जी के विचार इस प्रकार निबद्ध हैं–'कर्ममय सृष्टि के सब व्यवहार तृष्णामूलक अतएव दुःखमय हैं। जन्म–मरण के भवचक्र से आत्मा का सर्वथा छुटकारा होने के लिए व्यक्ति को मन निष्काम एवं विरक्त करना चाहिए तथा उसको दृश्य सृष्टि के मूल में रहने वाले आत्मस्वरूपी नित्य परब्रह्म में स्थिर करके सांसारिक कर्मों का सर्वथा त्याग करना उचित है।'[10]

कर्मयोग की अवधारणा का तात्पर्य वास्तव में त्याग की भावना से युक्त होकर, मन सहित समस्त इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में रखकर, निराकांक्ष व निरासक्त भाव से परोपकारार्थ कर्म करते हुए परब्रह्म परमात्मा में एकाकार होकर इहलोक के जन्म–मरण चक्र से उन्मुक्त होना है। यही प्रत्येक जीव के जीवन का प्रमुख अथवा परम लक्ष्य होना चाहिए, तभी वह एक सच्चा कर्मयोगी बनकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग

गीता में भगवान् योगेश्वर कृष्ण ने कर्मयोग का विशद् विवेचन करते हुए शास्त्रविहित कृत्यों को कर्म, कर्मों के त्याग को अकर्म तथा निषिद्ध कर्मों को विकर्म की संज्ञा दी है। श्रीमद्भगवद्गीता में सात्त्विक[11], राजस[12] एवं तामस[13] तीन प्रकार के कर्म तथा त्रिविध कर्त्ता बतलाए गए हैं। मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रहता; क्योंकि सभी मनुष्य प्रकृतिजन्य त्रिगुणों के वशीभूत होकर कर्म करने हेतु बाध्य होते हैं।[14]

भारतीय दर्शन परम्परा में कर्म को बन्धन का कारण माना गया है जबकि कर्मयोग में कर्म का बन्धनरहित स्वरूप निरूपित किया गया है। यज्ञ के निमित्त किए जाने वाले कर्मों से अतिरिक्त दूसरे कर्मों में संलग्न मनुष्य ही कर्मों से बँधता है। निःस्वार्थ भाव से एक–दूसरे को उन्नत करना ही परम कल्याण का आधार है। धर्माचरण करके पापों का क्षय करना और अपने विकास की ओर बढना; परन्तु 'फल की आकांक्षा न रखते हुए कर्म करना'[15] ही गीता का कर्मयोग है। इसमें समत्व प्राप्ति अर्थात् समता को योग कहा गया है–'समत्वं योग उच्यते।'[16] कर्मफल का त्याग करके अनासक्त[17] भाव से कर्म करना भी ईश्वर की उपासना के ही तुल्य होता है।

'योगः कर्मसु कौशलम्'[18] कहते हुए भगवान् कृष्ण ने कर्मों को बन्धनरहित होकर सम्पादित करने की प्रेरणा दी है। उन्होंने कर्मों

का परित्याग करने की अपेक्षा कर्मयोग को अधिक श्रेयस्कर बताया है क्योंकि कर्मण्यता से ही मानव को सिद्धि एवं परमपद की प्राप्ति होती है, अकर्मण्यता से नहीं। कर्मयोग के ज्ञानाभाव में सभी अज्ञानी जीव प्रकृतिजन्य त्रिगुणों के वशीभूत होकर कर्म करते हुए स्वयं को ही कर्त्ता मान बैठता है।[19] मनुष्य के मन से यदि कर्त्तापन का अहंकार मिट जाए तो विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो जाता है। कर्मयोग साधना में अभ्यस्त साधक शनैः शनैः सभी कर्मों को ईश्वर को अर्पित करके भक्ति–भाव सहित उत्साहयुक्त कर्म करता है।[20]

कर्मयोगी साधक कर्त्तापन के भाव अथवा अहंकार की समाप्ति होने पर जितेन्द्रिय, बन्धनमुक्त व राग–द्वेष से रहित होकर कर्म करता हुआ कर्मफल में निर्लिप्त रहता है। यजुर्वेद में भी आसक्तिरहित भाव से कर्म करते हुए सांसारिक जीवन को जीने पर बल दिया गया है।[21] मनुष्य यदि बाह्य दृष्टि से कर्म न भी करे और विषयों में लिप्त न हो तो भी उसका मन से चिन्तन करता हुआ वह मूढ़ व मिथ्याचारी कहा जाता है। भगवान कृष्ण स्वयं कहते है कि तीनों लोकों में कोई भी कर्त्तव्य न होने पर एवं किसी अप्राप्त वस्तु की लालसा न होने पर भी संसार को सक्रिय रखने के उद्देश्य से वे स्वयं सदैव कर्मरत रहते हैं, अन्यथा लोकस्थिति के लिए किए जाने वाले कर्मों का अभाव हो जाएगा जिसके परिणामस्वरूप सारी प्रजा नष्ट हो जाएगी। इसलिए आत्मज्ञानी व प्रकृति के बन्धन से मुक्त मनुष्य को भी सदैव कर्मण्य रहना चाहिए। अज्ञानी मनुष्य जिस प्रकार फलप्राप्ति की आकांक्षा से कर्म करता है उसी प्रकार आत्माज्ञानी को लोकसंग्रहार्थ कर्म करना चाहिए। इस प्रकार आत्मज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति ही वास्तविक रूप से कर्मयोगी हो सकता है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में कर्मयोग की महत्ता एवम् उपादेयता

आज के भौतिकवादी युग में व्यक्ति निरन्तर अपने आध्यात्मिक मूल्यों से दूर होता जा रहा है। वैश्विक स्तर से व्यक्तिवाद पर्यन्त समस्त मानव जाति केवल अपने सांसारिक दायित्वों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति तक सिमटकर रह गई है। समाज में भौतिक सुख–प्राप्ति के लिए अधर्म को भी अपने लक्ष्य प्राप्ति का सोपान बनाने में संकोच न करते हुए नैतिक व मानवीय आदर्शों की अवहेलना की जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप चारों दिशाओं में भय, अशान्ति, अनिश्चितता, अराजकता आदि का वातावरण निर्मित हो रहा है। मानवता को अन्धकारमय, भ्रष्टाचारलिप्त एवं नैतिकताविहीन स्थिति में नई दिशा दिखाने के लिए एक ऐसे दिव्य व्यक्तित्व की आवश्यकता है जो विश्व को अधर्म से रोककर धर्म के मार्ग पर प्रवृत्त कर सके। किसी धैर्यवान् व्यक्तिविशेष में दिव्यता का आधान कृष्णज्ञानामृत से ओत–प्रोत श्रीमद्भगवद्गीता पर चिन्तन कर तदनुसार कार्य करने से ही सम्भव है। ऐसे व्यक्ति की विश्व को परिवर्तित करने की पहल धीरे–धीरे अन्यों को भी सन्मार्ग की ओर अग्रसर करती है। मानव जीवन का मूल लक्ष्य सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके उन्नति करते हुए अपने अन्तिम गन्तव्य मोक्ष को प्राप्त करना है। गीता का कर्मयोग ही वर्तमान युग के पथभ्रष्ट मानव को उनकी समस्याओं के समाधान का मार्ग बताकर कर्त्तव्यपालन की दिशा में प्रवृत्त कर सकता है।

वैदिक शिक्षा पद्धति सदैव से ही मानव जीवन को धर्म से जोड़ने वाली एक महत्त्वपूर्ण कड़ी रही है। धर्म ही आध्यात्मिक जीवन का मूल आधार है। गीता ही धर्म का वह मार्ग है जो जीवन की नैतिक समस्याओं का समाधान खोजने में हमारी सहायता करता है। मानव जीवन से जुड़ी समस्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने हेतु गीता का परमात्मा प्रदत्त ज्ञान हर युग में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता आया है। आज के उन्नतिशील विश्व को पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करके सौहार्दपूर्ण रीति से आगे बढ़ने हेतु जिस दिशानिर्देश की नितान्त आवश्यकता है, वह केवल गीता के मार्गदर्शन से ही सम्भव है। आधुनिक युग का प्रत्येक कर्म प्रत्यक्ष या परोक्षरूपेण इसी ज्ञानपुंज पर आधारित है। समसामयिक परिदृश्य के ऐसे अगणित विषय हैं जिनका निदान ज्ञानामृतवर्षिणी गीता के पथ–प्रदर्शन पर ही आश्रित है; यथा–भारतीय सनातन संस्कृति के अनुकरण द्वारा विश्व पटल पर भारत के 'विश्वगुरु' बन 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की उदारतावादी विचारधारा को प्रसृत करने का विषय हो अथवा समस्त विश्व में भौतिकतावादी कुत्सित विचारधारा के कारण निरन्तर उत्पन्न होती तृतीय विश्वयुद्ध जैसी भयावह स्थिति का निदान पाना हो, विश्व के समस्त राष्ट्रों को परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों हेतु प्रेरित करना हो अथवा भारत के चन्द्रयान–3 की सफलता का अभूतपूर्व एवं हर्षद विषय हो, विज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति द्वारा कोविड़–19 जैसी असाध्य समस्या का हल प्राप्त करना हो अथवा राष्ट्रीय एवम् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी सम्मान की रक्षा का ज्वलन्त प्रश्न हो या फिर मानव जीवन व व्यवहार से लुप्त होती नैतिकता का पुनर्स्थापन हो; गीता के कर्मयोग के बिना इनकी सिद्धि असम्भव है।

गीता के कर्मयोग की प्रासंगिकता द्वापर युग से कलयुग पर्यन्त प्रतिपग दृष्टिगोचर होती है। यथा–राम, कृष्ण, विदुर से लेकर चाणक्य, स्वामी विवेकानन्द आदि अनेक ऐसे आदर्श व्यक्तित्व हैं जिनकी नीतियों में कर्मयोग का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति नैतिक मूल्यों के अभाव में अपूर्ण है। मानव जीवन को स्वार्थपरक भौतिकतावाद से पराङ्मुख कर नैतिकतावादी संस्कृति से जोड़ने के लिए एक आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। आज के बालक कल के भावी युवा हैं तथा किसी भी राष्ट्र की प्रगति उस देश के युवाओं पर निर्भर करती है। एक उत्तम शिक्षा प्रणाली ही किसी देश के युवाओं के भविष्य निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है, अतः युवाओं की जीवन शैली में इस आवश्यकता को हमारे देश के वर्तमान शिक्षाविदों द्वारा अनुभव किया गया जिसके परिणामस्वरूप भारत में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020' के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वैदिक अध्ययन, वैदिक गणित, श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण, रामचरितमानस, ज्योतिषशास्त्र, ध्यान एवं भारतीय परम्परागत शिक्षा पद्धति आदि नैतिक ग्रन्थों को अनिवार्यतः सम्मिलित किया गया है।

गीता का ज्ञान जहाँ एक ओर हमें जीवन की सत्यता से परिचित कराता हुआ अन्धविश्वास आदि झूठी मान्यताओं से मुक्ति दिलाने में सहायक है वहीं दूसरी ओर यह जीवन के समस्त संशय दूर करके हमें आत्मविश्वासी बनाता है। साथ ही मनुष्य रूप में कर्त्तव्य पालन, आत्मनियन्त्रण, अभ्यास, विवेकशीलता, सहनशीलता, क्षमाशीलता, निर्भीकता, विश्वकल्याण की भावना, मानसिक शान्ति तथा सकारात्मक दृष्टिकोण आदि ऐसी अनेक नैतिक विशिष्टताएँ गीता के अध्ययन से ही आती हैं। अतः विद्यालयी एवं महाविद्यालयी स्तर पर श्रीमद्भगवद्गीता को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

उपसंहार

मानव का आधुनिक जीवन सुख–सुविधा सम्पन्न होने पर भी अपने कर्त्तव्यों का समुचित ज्ञान न होने से विषादमय एवं अवसादग्रस्त होता जा रहा है। यह समस्यात्मक स्थिति कर्मयोग का रहस्य जानकर उचित कर्मों में प्रवृत्त होने पर ही सुलझ सकती है। गीता के कर्मयोग सम्बन्धी रहस्यज्ञान के उपरान्त ही मनुष्य के दैहिक, दैविक व आध्यात्मिक कष्टों का निवारण हो सकता है। इसमें भगवान् कृष्ण ने मानव को अपनी समस्त शक्तियाँ केन्द्रीभूत कर आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न करके कर्मफल प्राप्ति हेतु कुशलतापूर्वक संयोजित होने की प्रेरणा दी है। भौतिकतावादी विश्व में मानसिक संतोष एवं सुखप्राप्ति हेतु आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण परमावश्यक है। मनुष्य को कर्म से अनायास जोड़ने वाला कर्मयोग का यह मार्ग ही कर्मशील मानव के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आधुनिक समय में जीवन जीने हेतु नया दृष्टिकोण प्रदान करता यह ग्रन्थ सहस्त्रों वर्ष प्राचीन होकर भी नित्य नवीनता से पूर्ण है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को लाभ–हानि, सफलता–असफलता, सिद्धि–असिद्धि आदि से विरत होकर कर्म

करने का उपदेश देते है।[22] यदि वर्तमान समय में भी मानव द्वारा इस उपदेश का पालन किया जाए तो जीवन स्वतः ही आनन्दमय हो जाएगा। समाज की व्यवस्था को सुचारू एवं सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समाज के हर वर्ग का हर व्यक्ति अपना कर्त्तव्य पूरी निष्ठा और ईमानदारी से करता रहे।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि गीता के योग प्रकरण में वर्णित एकाग्रता से अपने कार्य को करना ही कर्मयोग है तथा अनासक्त होकर कर्म करने से ही एकाग्रता आती है। साथ ही आधुनिक मानव को अपने जीवन में द्विविध संतुलन (अन्तः एवं बाह्य) की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि ऐसा होने पर ही वह अहंकार, लोभ, ईर्ष्या आदि विकारों से मुक्त होकर समृद्ध जीवन व्यतीत करने में सफल होगा।

सन्दर्भ

1. बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।
   (तुलसीदासकृत रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड–42)
2. 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
   (यजुर्वेद, ईशोपनिषद्, 40.2)
3. ऋग्वेद, 1.22.19
4. ऋग्वेद, 1.148.2
5. त्रिविध कर्म–क्रियमाण,संचित एवं प्रारब्ध।
   (आर्य्योदेश्यरत्नमाला, 49–51)
6. बृहदारण्यकोपनिषद्, 03.02.13
7. योगसूत्र, 1.2
8. योगसूत्र, 2.29
9. योग–विश्वकोश (2015 ई0), पृष्ठ 1
10. तिलक बाल गंगाधर, गीतारहस्य, पृष्ठ 577
11. नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
    अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 18.23)
12. यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
    क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 18.24)
13. अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्।
    मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 18.25)
14. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
    कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 3.5)
15. ''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।''
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 2.47)
16. योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
    सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 2.48)
17. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
    असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 3.19)
18. बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
    तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 2.50)
19. प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
    अहंकार विमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 3.27)
20. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
    यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 9.27)
21. यजुर्वेद, ईशोपनिषद्, 40.1
22. न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
    न च संन्यासनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।
    (श्रीमद्भगवद्गीता, 3.4)